बाल कहानियां भाग - 14

आसमान की मेज

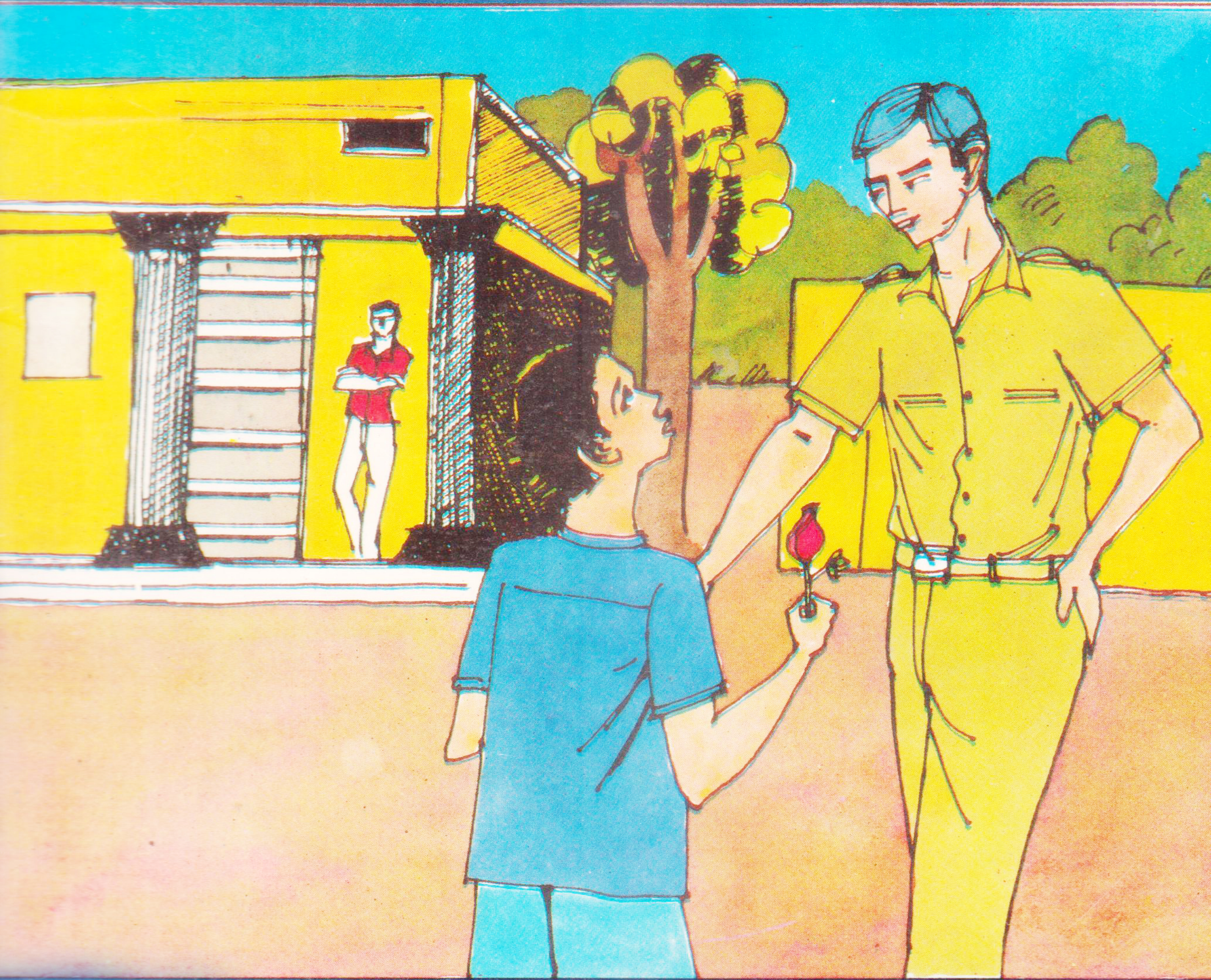

शशि प्रभा शास्त्री

बाल कहानियां भाग-14

आसमान की मेज

शशिप्रभा शास्त्री

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

बैसाख 1914 (अप्रैल 1992)

© प्रकाशन विभाग

मूल्य : 13.00 रुपये

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- एल.एल.ए. आडीटोरियम, 736, अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001
- 10-बी, स्टेशन रोड, लखनऊ-226019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-506004

बंगाल आफसेट वर्क्स, करोल बाग, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

प्रकाशकीय

कहानियां बच्चों को सबसे ज्यादा आकर्षित करती हैं। यदि उनमें मनोरंजन के साथ-साथ कोई शिक्षा या प्रेरणा भी हो, तो उनकी सार्थकता और भी बढ़ जाती है।

किसी समय कहानियों में उपदेश अधिक होते थे। आज वह समय नहीं रह गया है। आज के वैज्ञानिक युग में बच्चों को सीधे-सीधे उपदेश पसंद नहीं हैं। विज्ञान और उससे जुड़ी अन्य जानकारियों ने उनके मानसिक स्तर को एक नया धरातल प्रदान किया है। किन्तु इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि बच्चों को सद्प्रवृतियों और स्वस्थ जीवन-मूल्यों की ओर भी प्रेरित किया जाए। मनोरंजन को शिक्षा और प्रेरणा से जोड़ने का एक उपाय प्रेरक और शिक्षाप्रद कहानियों को रोचक और मनोरंजक ढंग से प्रस्तुत करना भी है। ऐसी कहानियों को बच्चे आसानी से ग्रहण कर सकेंगे और लेखक भी अपने उद्देश्य में सफल होगा।

प्रकाशन विभाग का सदैव यही प्रयास रहा है कि अपने बाल पाठकों को मनोरंजक और शिक्षाप्रद कहानियां उपलब्ध कराई जाएं। इसी क्रम में 'बाल कहानियां' शृंखला का प्रकाशन हो रहा है। 'आसमान की मेज' इसी शृंखला की एक और कड़ी है। इसकी लेखिका हैं—डा. शशिप्रभा शास्त्री।

आशा है, इन कहानियों से बच्चों का मनोरंजन होगा और साथ ही उन्हें स्वस्थ जीवन जीने की प्रेरणा मिलेगी।

डा. श्याम सिंह शशि
निदेशक

विषय-सूची

1.	जंगल के भीतर	1
2.	नए इंसान	5
3.	फूल का सपना	11
4.	अमरूद की बातें	15
5.	सही समय यही है	19
6.	एक अकेली लड़की	24
7.	एक पेड़ ऐसा भी	27
8.	मन का बोझ	32
9.	आसमान की मेज	35

जंगल के भीतर

"हमारा एन.सी.सी. का शिविर इस बार शहर से बाहर लगेगा", एन.सी.सी. कमांडेंट ने सन्देश दिया तो बच्चे खुशी से फूले न समाए। निश्चित दिन अपने माता-पिता से कह कर सबने अपनी-अपनी तैयारी कर ली। तैयारी अधिक नहीं थी। एन.सी.सी. आफिस से हर छात्र कैडेट को दो कम्बल तथा दो ड्रेस मिली ही थीं। रोज़ पहनने के कपड़े तथा कंघा, तेल, ब्रुश जैसी जरूरी चीजें अलग से एक अटैची में रख लेनी थीं।

सब छात्र कैडेट जब अपने सामान सहित लारियों में बैठकर शिविर वाले स्थान पर पहुंचे तो उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। यह स्थान बहुत रमणीक था—सामने ऊंचे-ऊंचे पहाड़, नीचे घना जंगल, एक ओर थोड़ी दूरी पर एक पहाड़ी गांव और दूसरी ओर बैरकों की लम्बी कतार, जिनमें कैडेटों को रहना था।

खाने-पीने का प्रबंध वहां उत्तम था, पर नित्य-प्रति का दैनिक कार्यक्रम बहुत कठिन था। सुबह साढ़े चार बजे बिस्तर छोड़ने की घंटी बजती और सब लड़कों को निकर-बनियान पहन कर मैदान में जाकर पी.टी. (शारीरिक व्यायाम) करना अनिवार्य होता। इसके बाद लौट कर नाश्ता कर लेने के उपरान्त एन.सी.सी. ड्रेस पहन कर सब परेड के लिए निकल जाते, जहां दोपहर तक कड़ी धूप में उन्हें परेड करवाई जाती, बन्दूक चलाने की शिक्षा दी जाती तथा देश की रक्षार्थ कर्त्तव्य पालन के व्याख्यान दिए जाते। इन व्याख्यानों में बताया जाता कि एक एन.सी.सी. कैडेट की क्या जिम्मेदारी है और उसके लिए कर्त्तव्य पालन करना कितना जरूरी है। इसके अतिरिक्त उन्हें नक्शे बनाना और नक्शे पढ़ना भी सिखाया जाता। इन सब कार्यों के लिये श्रम, लगन और ईमानदारी की बहुत जरूरत थी।

इन सब कैडटों में दो छात्र कैडेट, प्र[illegible] और सुखदेव, बहुत नटखट और आलसी थे। उनका पूरा ध्यान हरदम छिप-छिप कर शरारतें करने और काम से बचने की ओर ही रहता था। शिविर में वे आए भी इसीलिए थे कि खुली जगह में खूब पिकनिक मनाएंगे, मौज करेंगे और माता-पिता के आदेश से दूर रहकर खूब मनमानी करेंगे। पर यहां जब उन्होंने इतनी कठोर दिनचर्या देखी तो बहुत घबराए। इस सबसे छुटकारा पाने की तदबीर वे मन ही मन सोचने लगे। आखिर उन्होंने एक तरकीब निकाल ली थी। उन्होंने यह देखा कि जिन लड़कों की ड्यूटी बैरकों की रक्षा करने पर लग जाती है तो उन्हें उस समय पी.टी., परेड तथा अन्य कार्य नहीं करने पड़ते। यह ड्यूटी बारी-बारी से हर लड़के

कर दिया। [illegible] घंटे की कशमकश के बाद उनकी रस्सियां तड़ से टूट गईं और वे दोनों ताबड़तोड़ भाग चले। इधर [illegible] निश्चिन्त थे, उधर वे दोनों बिना रुके, बेदम होकर भागे चले जा रहे थे।

शिविर में पहुंचकर दोनों ने डाकुओं के सम्बंध में तुरंत सूचना दे दी। पल भर में ही सब कैडेटों ने चुपचाप डाकुओं को घेर लिया। सुबह होते-होते डाकू और डाकुओं की लूट का माल सब इन छोटे सैनिकों के हाथ में आ गया।

प्रदीप और सुखदेव दोनों को "वीर और मुस्तैद बच्चे" कह-कह कर चारों ओर से शाबाशियां मिल रही थीं, पर वे दोनों मन में सोच रहे थे कि वीर और मुस्तैद उन्हें अब सचमुच बनना है, क्योंकि भले ही वे देश के छोटे सैनिक हों, पर उनके चारों ओर बड़ा घना जंगल है, डाकू हैं, और उन्हें उस जंगल से, उन डाकुओं से भिड़ना है।

नए इंसान

प्रताप स्कूल का काम कर रहा था, तभी मां ने पुकार कर पूछा, "बेटा प्रताप, सतीश से क्रिकेट-सेट मांग लाए हो?"

प्रताप कांप गया, "मां, मैं अभी जाता हूं।"

"अब तो तुम जाओगे ही, अपने आप थोड़े ही सुध रहती है। किसी के यहां भी चीज पटक आए और फिर कोई गरज नहीं, मतलब नहीं, आखिर पैसे तो मां-बाप के खर्च होते हैं न, इसलिए क्या फिक्र है। कल को फिर कहोगे—"पापा, क्रिकेट-सेट चाहिए। पापा बेचारे फिर लाकर धर देंगे, यही न!"

"नहीं, मां, मैं अभी जाता हूं, मैं भूला नहीं था", प्रताप ने मेज पर रखी किताब बंद करते हुए कहा।

"भूला नहीं था, तो . . .?" मां ने आश्चर्य प्रकट किया।

"मैं कह तो रहा हूं, अभी जाता हूं और उससे कहता हूं।" प्रताप यह कहते-कहते जूते पहनता जा रहा था। तभी मां सामने आकर खड़ी हो गई।

"सच बता, 'भूला नहीं था', 'उससे कहता हूं', आखिर तेरी इन बातों का मतलब क्या है? मां ने पताप को झकझोड़ कर पूछा।

"तुम्हें क्या बताऊं मां, वह कहता है कि उसके पास मेरा कोई क्रिकेट-सेट नहीं है", कह कर प्रताप तख्त पर धम्म से बैठ गया।

"उसके पास क्रिकेट-सेट नहीं है, यह कहता है वह? और तूने कुछ भी नहीं कहा?"

"कहा और उसे पीटा भी।"

"और पिटा भी, यह क्यों नहीं कहता?"

"पिटता क्यों? क्रिकेट-सेट मेरा था, न कि उसका। मेरी चीज भी ले ले और मुझे पीट भी दे, यह खूब रही।" प्रताप ने रूआंसे होकर कहा। मां समझ गई कि दाल में कुछ काला है। लड़का कुछ छिपा रहा है। अगर इस समय भेजा, तो खैर नहीं। बोली, "कोई जरूरत नहीं, अब उसके यहां जाने की। अपने घर में बैठो और काम करो।"

"क्यों? मैं तो अब जरूर जाऊंगा।" और प्रताप मां की पुकार को अनसुनी करके घर से बाहर निकल गया।

मां रसोई में सब्जी छौंकती हुई सोचती रही, "नाहक मैंने अपने फूटे मुंह से क्रिकेट-सेट लाने की बात निकाली। इस बात को दिन भी तो बहुत बीत चुके हैं। बेकार गड़े मुर्दे उखाड़ने से क्या फायदा, भाड़ में जाए क्रिकेट-सेट। आपस में बेकार की मारपीट हो जाएगी।" तभी प्रताप के साथ एक लड़का भीतर घुसा और बोला, "चाची, सतीश ने प्रताप को खूब मारा है।"

"सतीश ने मारा है, . . . उई।" मां चीख कर भागी। लड़के के पीछे प्रताप सीधा खड़ा था।

"क्यूं रे, कहां लगी, मेरे लाल?" मां ने दुलार से पूछा, पर प्रताप ने मां को परे ठेलते हुए कहा, "कहीं नहीं लगी मेरे, क्यूं लगती, देख लो अगर कहीं खरोंच भी दिखाई दे।" और प्रताप मां को समझा कर अपनी मेज पर फिर काम करने लगा। मां के पूछने पर उसने कोई जवाब नहीं दिया। आखिर मां भी मन मारकर काम में लग गई।

प्रताप मेज पर किताब खोले बैठा था, पर उसका ध्यान कहीं और था। वह अपने ध्यान में डूबा इस समय भी सतीश के सामने खड़ा था।

"सतीश, क्रिकेट-सेट देगा या नहीं?"

"कैसा क्रिकेट-सेट, जा-जा बहुत देखे हैं ऐसे क्रिकेट-सेट लेने वाले।"

"कैसे नहीं देगा, मैं भी देख लूंगा। पहले तो घिघिया कर मांगता है और फिर अकड़ता है।" प्रताप कह रहा था।

"मैंने कह दिया, मेरे पास अब कुछ नहीं है। पूरे छह महीने से तुझे अपनी चीज का ध्यान नहीं आया। बड़ा बनता है चीज वाला।" सतीश साफ इंकार कर रहा था।

प्रताप ने सतीश को खींचकर नीचे गिरा दिया था। फिर सतीश उचक कर प्रताप की पीठ पर चढ़ गया था और दोनों में खूब गुत्थमगुत्था हुई थी। दोनों ने ही एक-दूसरे की पीठ और सिर पर ताबड़तोड़ घूंसे लगाए थे।

"पर, मैं मां से यह सब क्यों कहूं? और फिर अपने पिटने की बात, नीचे गिरने की बात। नहीं, नहीं, मां से यह सब मैं हरगिज नहीं कहूंगा। वह मुझे कमजोर समझेगी, मुझ पर तरस खाएगी। मैं किसी की दया नहीं चाहता, किसी की सहानुभूति नहीं मांगता, पर सतीश को एक दिन दिखा दूंगा कि मैं भी क्या हूं।" प्रताप बैठा सोचता रहा।

मां के कहने पर उसको खाना खाने के लिए उठना पड़ा, पर खाना खाने के बाद वह फिर चिंतामग्न हो गया। सतीश के द्वारा किए गए अपमान की आग से वह जला जा रहा था। उसने निश्चय कर लिया था कि वह अब सतीश से कभी बात नहीं करेगा, पर अपना क्रिकेट-सेट उससे लेकर ही रहेगा, चाहे किसी तरह भी हो। पर जब वह साफ इंकार कर रहा है, तो लेने का उपाय क्या हो सकता है? यही सब सोचता प्रताप बहुत देर तक किताब में झूठमूठ आंखें गड़ाये बैठा रहा। उसे याद आ रहा था, सतीश के माता-पिता ने भी तो अपने बेटे का समर्थन किया था।

"अरे, बेटा प्रताप रात बहुत हो गई, इतना मत पढ़, सो जा अब।" कई बार कहने के बाद जब मां स्वयं थक कर सो गई, तो प्रताप उठा और चुपचाप बत्ती बंद कर अपने बिस्तर पर लेट गया। कई तरह के प्रश्न उसके दिमाग में फिर भी मंडराते रहे। उसे पश्चाताप भी हुआ कि भला, सतीश के साथ खेलने के लिए वह अपना नया कीमती सेट क्यों ले गया और ले गया तो उसके घर ही क्यों छोड़ आया और अगर छोड़ भी आया तो इतने दिन क्यों भूला रहा। यह सोचते-सोचते न जाने कब उसकी आंख लग गई। सपने में भी वह बराबर सतीश से ही गुत्थमगुत्था होता रहा।

सवेरे आंख खुली तो उसे लगा कि उसकी पीठ अकड़ गई है, गर्दन और कंधे में भी उसने दर्द अनुभव किया। यह कल की आपसी लड़ाई की चोट बोल रही थी। पर प्रताप ने इस चोट पर ध्यान नहीं दिया। रोज की तरह तैयार होकर वह स्कूल चला गया। प्रताप और सतीश दोनों नवीं कक्षा में थे। कक्षा के सभी लड़कों से उनका अच्छा परिचय था।

उस दिन प्रताप का मन पढ़ने में बिल्कुल नहीं था, वह बहुत परेशान था। पहले तो उसने इस मामले को हेडमास्टर साहब के पास ले जाना चाहा, पर फिर यह सोच कर कि हेडमास्टर घरेलू मामलों से कोई मतलब नहीं रखते, उसने हेडमास्टर तथा मास्टर साहब किसी से भी कुछ न कहा। सभी लड़के खाने की छुट्टी में बाहर खाने-खेलने चले गए, पर प्रताप क्लास में ही बैठा रहा। मित्रों के आग्रह को भी उसने नहीं सुना। वह तो बुरी तरह विचार-मग्न था। सहसा उसने देखा कि सतीश के डेस्क की चाबी डेस्क पर ही पड़ी है।

"ओह!" प्रताप एकाएक उछल पड़ा। लपक कर वह डेस्क के पास गया, चाबी से सतीश का डेस्क खोला और ऊपर रखी हुई दो-तीन नोट्स की कापियां निकाल कर बाहर भाग गया। डेस्क वह खुला छोड़ आया था और उसे बेहद डर लग रहा था। वह अपने क्रिकेट-सेट के बदले उसकी किताबें चुराना चाहता था, पर ऊपर होने की वजह से उसके हाथ कापियां ही पड़ीं। कापियां उसने स्कूल में एक झाड़ी के पीछे छिपा

दीं और खुद लड़कों के साथ मिलकर खेलने लगा। उसके मन से काफी बड़ा बोझ उतर गया था। अब वह उछल-उछल कर बेहद आनंद से खेल रहा था।

खेल का घंटा समाप्त होने पर सभी विद्यार्थी कक्षा में लौटे और तभी सतीश ने एकाएक देखा कि उसके डेस्क का ताला खुला पड़ा है और कापियां गायब हैं।

"हाय, किसी दुष्ट ने मेरे पूरे साल की मेहनत को चुरा लिया है!" सतीश सचमुच चीख उठा था। पूछने पर उसने बताया कि उसकी बहुत जरूरी कापियां प्रताप ने चुराई हैं।

"मैंने चुराई हैं? झूठे! खबरदार, जो मेरा नाम लगाया तो।" प्रताप ने ललकार कर कहा। मास्टर साहब क्लास में आ चुके थे और लड़कों की गरमा-गरमी देख कर कारण पूछने लगे। लड़कों को आखिर सारा मामला बताना पड़ा।

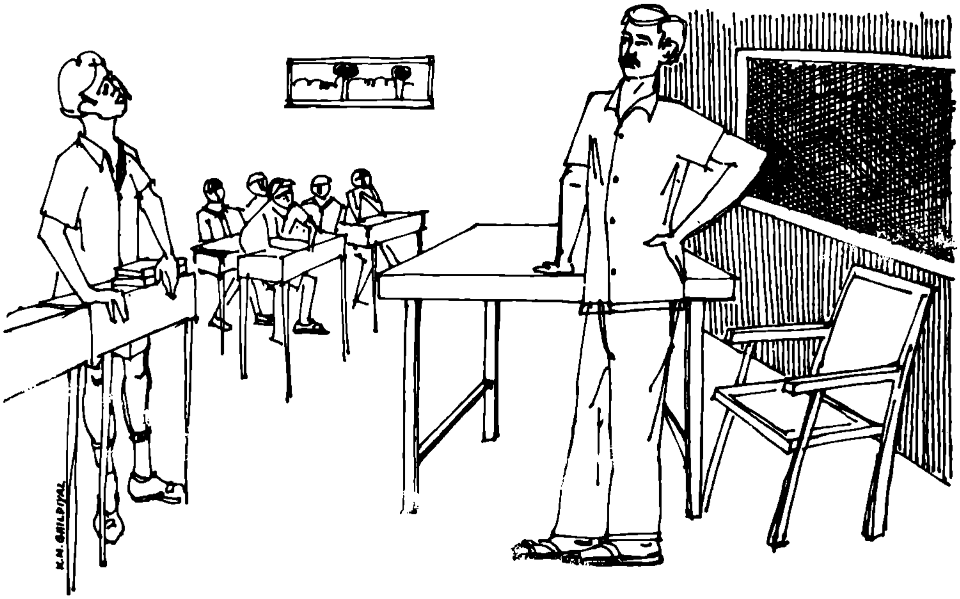

मास्टर साहब ने अब प्रताप को खड़ा कर के पूछा, "तुमने सतीश की कापियां चुराई हैं?"

"मैंने? "मैं क्यों चुराने लगा किसी की कापियां?" प्रताप ने सीना तानकर जवाब दिया? "फिर?"

"मुझे किसी की कापियों के बारे में जरा भी मालूम नहीं है।"

प्रताप ने साफ इंकार कर दिया। ज्यादा पूछने पर उसने कहा, "क्लास में क्या मैं ही अकेला लड़का हूं?"

"पर मुझे तुम अकेले पर ही शक है", सतीश ने मुंह फुलाकर कहा।

"शक है, तो पुलिस में रिपोर्ट कर दो।"

"प्रताप . . .।" मास्टर जी ने रोका, "तुम सीमा से बाहर जा रहे हो।"

"मास्टरजी, तो यह मेरा नाम क्यों लगाता है?" कहता हुआ प्रताप रो उठा और डेस्क पर सिर झुका कर बैठ गया। मास्टरजी ने उसके पास आकर उसे समझाया और कहा कि यदि सचमुच तुम चोर नहीं हो तो वह सतीश को सजा देंगे।

उस दिन प्रताप घर लौटा, तो बहुत खुश और संतुष्ट था, उसने सतीश से बदला ले लिया था। घर आते समय वह उन दोनों कापियों को साथ ले आया था। उसने उन्हें खोलकर देखा, कि सचमुच कापियों में पूरे साल के नोट्स लिखे पड़े थे। प्रताप बहुत खुश हुआ। घर पहुंचते ही मां ने उसे खुशखबरी सुनाई कि उसके चाचा दो-चार दिन में ही आने वाले हैं, उनकी तरक्की हो गई है और इस बीच उन्हें हफ्ते भर की छुट्टियां मिली हैं।

"तरक्की, यानी चाचा अब बड़े अफसर बन गए हैं।" प्रताप को यह जान कर आश्चर्य हो रहा था क्योंकि पिछले महीने पिताजी ने बताया था कि अभी चाचा की तरक्की का नम्बर पांच साल बाद है।

"इतना ताज्जुब क्यों हो रहा है तुझे? यहां सब कुछ चलता है। तेरे पिताजी के दोस्त हैं कानपुर में, उन्होंने कोशिश की थी।"

"पर मां, चाचा से पहले तो किसी और की तरक्की का नम्बर बता रहे थे, पापा?"

"ठीक बता रहे थे। वह आदमी दस साल से काम कर रहा है, पर उसकी कोई सिफारिश नहीं थी, तुम्हारे चाचा तो धींगाधींगी में इतनी ऊंची जगह पहुंचाए गए हैं।"

"मां, उस आदमी को बहुत बुरा लगा होगा न?" प्रताप खाते-खाते कौर रोक कर पूछने लगा था।

"मैं उस आदमी को बहुत अच्छी तरह से जानती हूं, बेटा। सात-आठ तो बच्चे ही हैं उसके। और भी इतने खर्चे हैं कि कुछ पूछो ही मत। मैं तो कह रही थी कि उस बेचारे का हक मार कर अपने भाई को तरक्की मत दिलाओ, पर तेरे पापा ने नहीं सुना।"

"चाचाजी अपने आप कह देते कि वह किसी का अधिकार नहीं लेंगे", प्रताप ने कौर चबाते-चबाते पूछा।

"ठीक है, बेटा पर उसके लिए बड़ी हिम्मत चाहिए। इतनी हिम्मत आज के इंसान में है कहां?" कह कर मां चली गई।

प्रताप भी उठ गया। कुल्ला करके वह अपनी मेज पर जाकर कहानी की किताब पढ़ने लगा। पर न जाने क्यों उसे उदासी घेरने लगी और यह वाक्य उसके दिमाग पर बार-बार चोट करने लगा, "आज के इंसान में इतनी हिम्मत है कहां?" और इसके साथ ही उसके दिमाग में आने लगा, मां सच कहती हैं कि आज के इंसान में इतनी हिम्मत नहीं है। उसे याद आया, उसमें हिम्मत नहीं थी, तभी तो वह आज क्लास में बराबर झूठ बोलता रहा, अकड़ता रहा और कहता रहा कि उसने कापियां नहीं ली हैं। सतीश में भी हिम्मत नहीं है, झूठ बोलता है कि उसने क्रिकेट-सेट नहीं लिया। हम दोनों आज के इंसान हैं, देश के नए नागरिक हैं, दूसरों की चीजें ले-लेकर झूठ बोलते रहते हैं और सोचते-सोचते उसके दिमाग की नसें तनने लगीं। रात काटनी उसे भारी हो गई।

सवेरे प्रताप जब क्लास में पहुंचा, तो वे दोनों कापियां उसके हाथ में थीं। मास्टर जी के क्लास में आते ही वह उठ कर खड़ा हो गया और बोला, "मास्टरजी, कल सतीश की कापियां मैंने ली थीं, क्योंकि उसने मेरा क्रिकेट-सेट लिया था। उससे मेरा क्रिकेट-सेट दिलवा दीजिए, मैं उसकी कापियां दे दूंगा।"

हक्के-बक्के मास्टरजी मुंह खोले प्रताप को देख रहे थे।

"तुम में इतना बड़ा साहस! अपना अपराध सबके सामने स्वीकार करने की ताकत। प्रताप, तुम कितने अच्छे हो।" मास्टरजी खड़े होकर प्रताप के सिर पर हाथ फेरने लगे।

"मास्टरजी, मैं देश का साहसी नागरिक बनना चाहता हूं। कापियां चुरा कर मुझे चैन नहीं आया। मुझे लगता रहा, यह बदला कैसा, जो मैंने छिप कर चोरी से लिया . . .", प्रताप का गला यह कहते-कहते रुंध गया।

मास्टरजी कुछ कहने वाले थे कि तभी उन्होंने देखा, सतीश अपनी जगह से उठा चला आ रहा है। उसका गला भी भर्रा रहा था। बड़ा रुक-रुक कर वह कहने लगा, "प्रताप का क्रिकेट-सेट मैं आज ही वापस कर दूंगा। मेरे पास इसका क्रिकेट-सेट था, पर उसे मुफ्त में हथियाने के लिए ही मैंने झूठ बोला था। प्रताप मुझे माफ कर दो।"

मास्टरजी दोनों लड़कों के बीच में खड़े थे और कह रहे थे—

"मैं इन दोनों लड़कों से आज बेहद खुश हूं, क्योंकि इनमें सच्ची बात कहने की हिम्मत है। ये दोनों देश के सच्चे नए इंसान हैं।"

क्लास में लड़के तालियां पीट रहे थे, सबके चेहरों से नए इंसान बनने की नई रोशनी झांक रही थी।

फूल का सपना

तस्वीर के नीचे बड़े अक्षरों में लिखा था—चाचा नेहरू। सुधीर तस्वीर के ऊपर पूरा झुक गया और न जाने क्यों देर तक निहारता रहा।

"क्या सोच रहा है?" सुधीर की मां ने कमरे में प्रवेश करते हुए पूछा।

"कुछ भी तो नहीं।" सुधीर को मानो किसी ने गहरी नींद से जगा दिया हो। वह बोला, "मां, देखो यही तो चाचा नेहरू हैं?"

"होंगे।" मां ने पलंग पर चादर बिछाते हुए लापरवाही से कहा।

"होंगे नहीं, हैं। मां, इधर आओ, देखो।"

सुधीर के नन्हें-नन्हें हाथों के जोर से मां खिंची चली आई और बोली "हां, हां, हैं, देख लिया अब तो छोड़।" और वह फिर बाहर चली गई।

सुधीर को आश्चर्य हो रहा था कि मां ने चाचा नेहरू को ध्यान से क्यों नहीं देखा, जवाहर कट जाकेट, बड़ी-बड़ी आंखें, उठी हुई नाक, बिलकुल सादा, पर कितना मनमोहक है व्यक्तित्व उनका। वह एक फूल देती हुई बच्ची को प्यार कर रहे थे। सुधीर को चाचा नेहरू बहुत प्यारे लग रहे थे। काश! इस बच्ची की जगह वह स्वयं होता।

आज चौदह नवम्बर है, चाचा नेहरू का जन्म दिन, बच्चों के हर्षोल्लास का दिन, परेड में जाने का दिन। पर सुधीर को आज इस सबसे कुछ मतलब न था। उसके नगर में चाचा नेहरू स्वयं पधारे हुए हैं। वह क्यों इस रेले-मेले में जाए। वह तो चाचा नेहरू के दर्शन करेगा। कल शाम को उसने पिता से पूछा था, "पिताजी, चाचा नेहरू हमारे शहर में अपने जन्मदिन के दिन क्यों आए?"

"अपना जन्मदिन शांति के साथ मनाने।"

"फिर तो वह परेड के मेले में आएंगे न?"

"नहीं, बेटा। नेहरूजी शांति चाहते हैं, शोरगुल नहीं चाहते। वह चाहते हैं, पूरे देश के बच्चे अगर चाहें तो मिल-जुल कर हंसी-खुशी से उनका जन्मदिन मनाएं और वह शांति से बैठें।"

"उनका जन्मदिन उनके बिना? फिर आप मुझे जन्मदिन के मौके पर स्कूल क्यों नहीं जाने देते? मेरे बिना मेरा जन्मदिन क्यों नहीं मना लेते?"

प्रत्युत्तर में पिता खिलखिला कर हंस पड़े और फिर कुछ नहीं बोले। अखबार के पन्ने को झुककर देखने लगे।

सुधीर वहां से हट कर रसोई में मां के पास पहुंचा। मां ढेर कामों को सोच-सोच कर भुनभुना रही थी। ढेर सारे आलू छीलने को पड़े थे और छोटा राजीव उनके कंधे पर चढ़ रहा था। सुधीर ने कुछ न पूछा और दबे पांव बाहर निकल गया। रात को देर तक बैठा हुआ वह आसमान की ओर देखता रहा। उसे लगा नेहरूजी उसी के बराबर बड़े हैं, पूरे आठ वर्ष के और वह एक बड़े से काले रंग के घोड़े पर चढ़े हैं और दौड़े जा रहे हैं। सुधीर की छाती फूल उठी।

चौदह नवम्बर की सुबह। सुधीर बहुत जल्दी उठा। आठ वर्ष का सुधीर, दुबला-पतला, छोटे-छोटे हाथ-पैरों वाला सुधीर, जरा-सा दूध पीकर चुपचाप घर से निकल पड़ा। सूनी सड़क पर वह अकेला बढ़ता चला जा रहा था।

"नेहरूजी कहां ठहरे हैं?" बीच-बीच में वह पूछता जाता।

"सर्किट हाउस में", लोग बतलाते। "यहां से पूरे दस किलोमीटर है।"

"दस किलोमीटर। कोई बात नहीं।" और सुधीर चलता गया। चाचा नेहरू से मिलने की उत्सुकता उसे आगे बढ़ाए लिए जा रही थी। उसे बड़ी हैरानी हो रही थी कि आज सब लोग परेड के मैदान की ओर क्यों बढ़े चले जा रहे हैं। वे भला चाचा नेहरू के बिना उनका जन्मदिन कैसे मना लेंगे? सुधीर सोचता चला जा रहा था कि वह चाचा नेहरू से जाकर क्या कहेगा। अगर वह उस के साथ भीड़ के सामने नहीं चलेंगे तो कम-से-कम उसे थपथपा तो देंगे। उसके फूल को अपने हाथ में प्यार से थाम लेंगे और अपने हाथ में थमे हुए फूल को उसने और संभाल कर थाम लिया। इस फूल को वह बड़े जतन से घर के पास के एक बाग से तोड़ कर लाया था।

सुधीर कई मील चल चुका था। तेज धूप उसके सिर को तपाने लगी थी। राह की उड़ती हुई धूल उसके बालों पर छा गयी थी पर वह बढ़ता चला जा रहा था। थकावट अथवा उदासी का कोई चिन्ह उसके पास नहीं था। पर यह क्या, वह न जाने कहां चला आया था—सूना वीरान रास्ता, इधर-उधर झाड़ियां, कहीं बकरियां चर रही थीं तो कहीं भेड़ें। सुधीर एक पत्थर पर बैठ गया।

एक राहगीर से उसने पूछा, "चाचा नेहरू कहां मिलेंगे?"

"चाचा नेहरू ? पगले देख सामने कोठी है न बहुत बड़ी। उसमें ही चाचा नेहरू रहते हैं। पर सिपाही तुम्हें अंदर नहीं जाने देंगे। गोली मार देंगे।"

"मैं गोली खा लूंगा। पर मुझे मालूम है कि चाचा नेहरू के राज्य में वे मुझ पर गोली नहीं चला सकते।" सुधीर दौड़ कर आगे बढ़ने लगा।

सचमुच वहां पहरा था। एक सिपाही ने उसे दूर से इशारा किया कि वह उस रास्ते न आए पर अपनी धुन के आगे सुधीर किसकी बात सुनने वाला था। सिपाही उसके पास आया और कड़क कर बोला, "बच्चे, तू इधर कैसे आया ?"

"चाचा नेहरू से मिलेने।"

"चल, तुझ जैसे से चाचा नेहरू नहीं मिला करते।" सिपाही ने घुड़की लगाई।

"क्यों ? मुझमें क्या कमी है ? देखो मेरे पास यह फूल भी है। इसे मैं चाचा नेहरू को दूंगा।" सुधीर ने लालच दिखाती हुई मुद्रा में कहा।

सुधीर की भोली-प्यारी बोली पर सिपाही रीझ गया। बड़े दुलार से सुधीर की ठोड़ी से हाथ लगाते हुए बोला, "बच्चे, आज नेहरूजी किसी से नहीं मिलेंगे।"

"क्यों, आज तो उनका जन्मदिन है।" सुधीर ने आश्चर्य दिखाते हुए कहा।

"इसलिए तो। आज वह आराम करेंगे। सुधीर सिपाही की इस बात को बिल्कुल नहीं समझा। मुंह बाये खड़ा रहा। सिपाही फिर बोला, बच्चे, नेहरूजी कोई उस मकान

में थोड़े ही हैं जिसमें तुम समझ रहे हो। उनका कमरा तो बहुत अंदर है, बहुत अंदर। फिर आज उनकी तबियत भी ठीक नहीं है। आज वे तुम्हारा फूल भी नहीं ले सकेंगे। शायद आराम कर रहे होंगे। तुम अच्छे बच्चे हो, जाओ लौट जाओ। सिपाही ने सुधीर का गाल थपथपा दिया। तभी एक दूसरा सिपाही वहां से गुजरा। पहले सिपाही ने कुछ इशारा किया। दूसरे सिपाही ने सुधीर को गोद में उठा लिया। फिर वह उसे बहुत दूर ले गया और धीरे-धीरे मुख्य रास्ते पर ले आया। वहां आकर उसने सुधीर को गोद से उतार दिया, बोला, "बच्चे, अब तुम सीधे अपने घर चले जाओ। नेहरू चाचा अपने ही घर में मिलते हैं। तुम दिल्ली जाओ तो मिल लेना। अब पीछे मत लौटना, नहीं तो कुत्ते चिपट जाएंगे।

सुधीर कुछ कहने के लिए हकलाता ही रह गया और सिपाही पीछे मुड़ कर बहुत दूर जा पहुंचा। सुधीर को इतना गोली से डर नहीं लगता था जितना कुत्तों से, इसलिए वह लौट पड़ा। उसके घर पहुंचते-पहुंचते दिन उलट गया था और उसके पांव तख्ता हो गए थे। मां आंसू भरे दरवाजे पर खड़ी थी। उसे देखते ही वह दौड़ पड़ी और छाती से लगा कर बोली, "कहां गया था मेरा लाल? हम तेरे कारण मेले भी नहीं गए।"

सुधीर का हृदय इन प्यार के बोलों से और भी भारी हो उठा। वह हिचकियां ले-लेकर रोने लगा। बोला, "मां, मैं चाचा नेहरू को देखने गया था, उन्हें यह फूल देने गया था। वह मुझसे मिले भी नहीं, वह मुझसे अपने घर पर मिलें तो मैं उनके शहर जाऊंगा।"

"पागल है बेटे, नेहरूजी किसी से कहीं भी नहीं मिलते। और तू भला नेहरूजी से क्यों मिलना चाहता है? तूने मिलने के लिए इतने घंटे बरबाद कर दिए, अपनी शक्ति नष्ट कर दी। तू ऐसे काम कर जिससे तू भी नेहरूजी के समान बने, तेरे दर्शनों के लिए भी लोग तरसें।"

"क्या कहती हो मां, नहीं मुझे देखने के लिये लोग तरसेंगे नहीं।" और सुधीर ने अपने को मां की बाहों से छुड़ा लिया।

रात भर वह स्वप्न देखता रहा। वह चाचा नेहरू है और उसके दरवाजे पर हजारों बच्चों की भीड़ है। दूर के, पास के, हर भाषा के, हर प्रांत के। और बच्चों के हाथों में फूल हैं—ताजे, सफेद और गुलाबी गुलाब।

इसके बाद सुधीर ने कभी किसी नेता के दर्शन के लिए प्रयत्न नहीं किया। वह तो रात-दिन इस प्रयत्न में जुट गया कि वह खुद दर्शनीय बन सके, सबको खुल कर दर्शन दे सके।

अमरूद की बातें

सफेद अमरूद बहुत मोटा था। सब्जियों के बीच रखा हुआ वह अकेला छोटे सफेद कद्दू की तरह लग रहा था। मुन्नी ने इतना बड़ा अमरूद देखा, तो चीख कर बोली, "कूकी, भाग कर जाओ! देखो, कितना बड़ा अमरूद है!" कूकी मुन्नी की आवाज सुनते ही दौड़ा आया और इतना मोटा अमरूद देख कर खिलखिला कर हंस पड़ा। तभी मोटा अमरूद गुर्राकर बोला, "बच्चो, तुम मुझे देखकर हंसते हो! जानते नहीं, मुझ में कितनी ताकत है?"

"ताकत तुम में? मोटे आदमी तो फफ्फस होते हैं। उनमें ताकत कहां होती है भला! है न कूकी?" मुन्नी ने अमरूद के प्रत्युत्तर में अपने छोटे भाई कूकी का समर्थन चाहा। कूकी भी गर्दन हिलाकर बोला, "हां, हां, मोटों में कोई ताकत नहीं होती। हम चाहें तो तुम्हारा पेट अभी चाकू से फाड़ कर फेंक दें।"

"ह-ह-ह-ह-ह!" अमरूद इस बार जोर से हंसा, बोला, "तुम मुझे फाड़कर भले ही फेंक दो, पर खा नहीं सकते।"

"क्यों? दोनों भाई-बहन एक स्वर से पूछ बैठे।

"यों कि मेरे पेट में बहुत सारे बीज हैं। वे सब तुम्हारे दांतों के छेदों में भर जाएंगे और फिर तुम्हारे दातों में दर्द होगा, तुम रोते फिरोगे।"

"हमारे दांतों में छेद, भला, क्यों होंगे?" मुन्नी ने हंसकर कहा और साथ ही अपना पूरा मुंह एकदम खोल दिया। कूकी ने भी उसकी देखा-देखी ऐसा ही किया।

अमरूद ने देखा की मुन्नी के दांत सचमुच मोती की तरह एक लाइन में जड़े हुए थे, चिकने और एकदम उजले, पर कूकी के पिछले, निचले दांतों में दो बड़े-बड़े छेद थे, जिनमें से एक में अब भी रोटी का नन्हा टुकड़ा घुसा हुआ था।

"ठीक मुन्नी, तुम मुझे खा सकती हो। पर मुन्नी, जरा यह तो बताओ कि तुम्हारे दात इतने अच्छे कैसे रहे?

मुन्नी बोली, "यह कौन सी बड़ी बात है! सुबह तो मैं दांत मांजती ही हूं, पर रात को भी मैं ब्रुश से दांत साफ करती हूं। कूकी को दांत साफ करने में आलस आता है, इसीलिए इसके दांत खराब हैं।"

कूकी, जो दोनों की बातें बड़े ध्यान से सुन रहा था, बोला, "मुन्नी गलत कहती है। मैं भी दोनों समय दांत साफ करता हूं। मेरा छोटा-सा ब्रुश सामने दीवार पर टंगा है। अमरूद भाई, तुम जरा देखो तो सही," कहते हुए कूकी ने अमरूद को बुरी तरह झकझोर दिया।

अमरूद बोला, "कूकी, तुमने तो मेरे कंधों में बुरी तरह दर्द कर दिया। अच्छा तो फिर बताओ कि तुम्हारे दांत क्यों खराब हैं?

कूकी का उत्तर मुन्नी ने दिया, "मैं बताऊं, अमरूद, यह चुईंगम, मीठी गोलियां, लालीपाप और बबलगम खूब खाता है, इसीलिए ...."

"तो इससे क्या?" कूकी ने होंठ सिकोड़ते हुए कहा।

अमरूद बोला, "वाह! इससे कुछ हुआ ही नहीं। तुम इन चीजों को खाते हो और ये चीजें तुम्हारे दांतों को खा लेती हैं।"

"तभी तो सब मीठी चीजें खाकर मैं तुरन्त कुल्ला कर लेती हूं। कल ही तो मामा जी इमरती लाए थे न कूकी, मैंने खाई और खाने के बाद खूब अच्छी तरह दांत साफ कर लिए," मुन्नी ने सफ़ाई पेश की।

"न भई, मीठी चीज खाने के बाद ही क्या, जो भी चीजें खाओ, खाने के बाद मुंह जरूर साफ कर लेना चाहिए", अमरूद ने समझाया।

"हम सब समझ गए", कूकी बोला, "पर हम आज तुम्हें जरूर खाएंगे।"

"आज तो तुम मुझे खा ही नहीं सकते। मैंने कहा न, तुम्हारे दांतों में छेद हैं," अमरूद ने जवाब दिया।

"छेद तो अब रहेंगे ही। आगे के लिए मैं कोशिश करूंगा।"

"यानी?"

"यानी चुइंगम या गोली नहीं खाऊंगा।"

"तो और क्या खाओगे?"

"ज्यादातर फल खाऊंगा।"

"ठीक, बिल्कुल ठीक। फल दांतों को खराब नहीं करते। पर कभी चुइंगम या गोली खाओ तो?"

"कभी-कभी खाऊंगा, पर बहुत कम खाऊंगा।"

"बहुत कम खाने पर भी ....?"

"कुल्ला जरूर कर लूंगा।"

"ठीक, पर मुझे नहीं छोड़ोगे?"

"हरगिज नहीं!" इस बार मुन्नी, कूकी दोनों एक साथ चिल्लाये।

"क्यों आखिर?"

"क्योंकि तुम हमें अच्छे लगते हो।"

"नहीं, नहीं क्योंकि मुझमें बल है।"

"बल होता, तो तुम्हें हम खा ही नहीं सकते थे।"

"पगले बच्चो, बल कोई दूसरों को सताने के लिए थोड़े ही होना चाहिए। देखो, मैं अपने बल से दिल को तरावट, पेट को मुलायमियत और जीभ को मिठास देता हूं। अमीर-गरीब सब के पास भाग कर जाता हूं और उनका स्वास्थ्य बनाता हूं। समझे?"

"समझ गए", दोनों ने हामी भरी।

"पर याद है, कूकी, तुम कल बहुत देर तक पिल्ले की पूंछ खींचते रहे थे और वह बेचारा कूं-कूं करता रहा था?" मुन्नी ने शिकायत की।

"बुरी बात है", अमरूद बोला।

कूकी का सिर शर्म से झुक गया, बोला, "अब मैं अच्छे काम करूंगा।"

"और सुनो, तुम दांतों वाले डाक्टर के पास भी जाओगे। उससे अपने छेदों को भरवा लोगे। नहीं तो पास वाले दांत भी खराब हो जाएंगे" अमरूद ने कूकी को बड़े प्यार से समझाया।

"मैं पिता जी से कहूंगा," कूकी ने कहा।

दोपहर ढल चुकी थी। कूकी के दोस्त उसको खेलने के लिए पुकार रहे थे। उस आवाज ने कूकी को इतना आनंदित कर दिया कि कूकी तुरंत बाहर भाग गया। मुन्नी को मां ने रसोई में आवाज दे दी और मोटा अमरूद सब्जियों के बीच में यों ही अकेला पड़ा रहा। उसे बड़ा तरस आया कि उसने क्यों इतनी सारी बातें की कि बेचारे बच्चे उसे खा भी नहीं सके। पर जब भोजन का समय हुआ तो दोनों बच्चों ने देखा कि मां ने उस मोटे अमरूद को काट कर प्लेट में सजा दिया है। दोनों के मुंह में पानी भर आया। एक-एक टुकड़ा दोनों ने उठाकर मुंह में रख लिया। पर यह क्या, इसमें तो एक भी बीज नहीं था। मक्खन की तरह चिकना, बिल्कुल सफेद और बेहद मीठा अमरूद, एक अनोखी खुशबू लिये, मुंह में खूब ठंडक पहुंचा रहा था। दोनों सोचने लगे, "खूब बहकाया अमरूद ने हमें।" तभी पिताजी बोले, "बच्चो, तुमने खाया यह जाड़ों का मीठा इलाहाबादी अमरूद? ऊपर से भी सफेद, भीतर से भी सफेद।"

बच्चों का मुंह अमरूद से भरा हुआ था। इसलिए सिर्फ गर्दन हिलाने के सिवा, कुछ भी न बोल सके, पर अमरूद की मीठी-मीठी बातें याद आ जाने से जो हंसे तो फिर हंसते रहे।

सही समय यही है

सुनहरा बड़ा प्यारा लड़का—स्वस्थ, सुन्दर, सुशील। मददगार इतना कि मोहल्ले में कोई भी किसी समय कैसा भी काम कह देता वह करने के लिए तैयार रहता। सुशीलता उसकी आदत में शामिल थी। भोले-भाले उस सदगुणी बच्चे में यदि दोष था तो बस एक और वह था—समय पर कोई काम न करने की आदत। वह कभी समय पर नहीं उठता था, कभी समय पर स्कूल नहीं पहुंचता था, न घर लौट पाता था, न समय पर पढ़ पाता था और न समय पर सो पाता था। खेलने लगे तो घंटों खेलते ही रहे, कहानियां पढ़ने में जुट गए तो पढ़ते ही रहे। समय के अपव्यय और नियमबद्धता की ओर कभी उसका ध्यान ही नहीं जाता था। इसलिए वह क्लास में भी होशियार नहीं था। कोई उसका एक दृष्टि से विश्वास नहीं कर पाता था कि वह कभी भी समय पर काम समाप्त कर लेगा। सुनहरे के माता-पिता उससे इतना तंग आ गए, विशेषतः उसकी मां की कुछ पूछिए मत। उसकी मां कहती, "बेटा, हमें नीचे से आलू तो ला दो। देखो, मेहमान घर में बैठे हैं। देखें, राजा बेटा कितनी जल्दी लौटता है लेकर।" उत्साह से उसे यों भर कर मां निश्चिन्त होकर दूसरे काम में लग जाती, किन्तु घंटे भर से कम में राजा बेटे लौटने का नाम न लेते। घर और स्कूल दोनों में ही सुनहरे के सुस्त और लेट-लतीफ होने की चर्चा फैल गई। सुनहरा बहुत दुखी हुआ पर अपनी आदत से वह लाचार था। आखिर स्कूल के मुख्याध्यापक ने एक उपाय सोचा। उन्होंने स्कूल में घोषणा करवा दी कि जिस कक्षा के सभी विद्यार्थी महीने के सम्पूर्ण दिन समय पर उपस्थित होंगे, उस कक्षा को एक अति सुन्दर ट्राफी पुरस्कार में प्रदान किया जाएगा।

कक्षा को पुरस्कार दिलवाने के लिए सुनहरा अपनी आदत बदल देगा, ऐसा सबको विश्वास था और ऐसा हुआ भी—अन्य छात्रों की भांति सुनहरा भी प्रयत्न में जुट गया। हरेक बालक की इच्छा थी कि उसकी श्रेणी ही विजयोपहार पाए, किन्तु सुनहरे की कक्षा को छोड़कर स्कूल-भर में ऐसी कोई भी कक्षा नहीं रही जिसे कभी न कभी उपहार न मिला हो। पूरा वर्ष व्यतीत होने को आया, किन्तु सुनहरे का स्वभाव नहीं बदला, सो नहीं बदला। आखिर एक दिन उसकी कक्षा के छात्रों ने सुनहरे को आ पकड़ा।

"सुनहरे! तुम जानते हो, हमारी कक्षा सदा हार जाती है, क्यों?"

"मेरे कारण!" सुनहरे ने लड़कों के झुंड के सामने सिर झुकाए हुए कहा।

"फिर तुम समय पर क्यों नहीं आते हो?" सोहन ने कड़क कर पूछा।

"और हमारी कक्षा को नीचा दिखाते रहते हो," श्याम ने स्पष्ट करते हुए कहा।

"काश! हमारी कक्षा को भी ट्राफी मिल जाती सिर्फ एक बार," रोहित ने चटकारी-सी लेते हुए कहा।

"हां, हां कम-से-कम एक बार तो मिल ही जाती," नवीन ने समर्थन किया।

"पर हमें ट्राफी कभी नहीं मिल सकती," एक सामूहिक स्वर उठकर हवा में गूंज गया।

"सुनहरा तुझे क्या लगता है, तू अगर ठीक दस बजे स्कूल में पहुंच जाए तो!" राजीव ने सुनहरे के कंधे पर हाथ रखकर पूछा।

"जानते हो, मैं कितनी कोशिश करता हूं समय पर पहुंचने की।"

"हां, रोज सवेरे पांच बजे उठता हूं," सुनहरे ने रूमाल से आंखें पोंछते हुए कहा।

"ओह, समय पर पहुंचने के लिये पांच घंटे पहले उठते हो," नरेन्द्र ने व्यंग्य कसा।

अजय, जो अब तक चुप खड़ा था, एकाएक आगे बढ़ कर बोला, "नरेन्द्र व्यंग्य मत कसो। तुम्हें नहीं मालूम सुनहरा समय पर पहुंचने की कितनी फिक्र रखता है, किन्तु किसी न किसी कारण लेट हो जाता है। अब हमें एक काम करना पड़ेगा कि हम में से कोई लड़का आधा घंटे पहले सुनहरे के घर पहुंच कर उसे अपने साथ स्कूल ले आए। एक महीने तक यही क्रम रखें। बस ट्राफी हमारी है।"

"अरे, यह तरकीब तो बहुत अच्छी है," राजीव ने चटपटे स्वर से कहा, "मैं सुनहरे के घर से रोज उसे अपने साथ लेता आऊंगा।"

"हूं! यह ठीक रहा।" अजय ने राजीव की पीठ ठोंकते हुए कहा। दूसरे दिन पहली तारीख थी। इस बार सुनहरे की कक्षा ने ट्राफी जीतने का निश्चय कर लिया। अब पूर्व-निश्चित क्रम चल पड़ा। प्रतिदिन राजीव साढ़े नौ बजे सुनहरे के घर आ जाता और फिर दोनों बातें करते हुए ठीक समय पर स्कूल के गेट में दाखिल होते। अब सबको आशा बंध गई कि इस महीने पुरस्कार छठी कक्षा का है। चौबीस दिन तक लगातार यह क्रम चलता रहा। सुनहरा और उसकी कक्षा के बच्चे बहुत प्रसन्न थे। उधर मुख्याध्यापक जी भी अपनी योजना के परिणाम से बहुत संतुष्ट थे कि अचानक एक दिन सुनहरे की काहिली ने कक्षा के सम्पूर्ण विद्यार्थियों की आशा पर पानी फेर दिया। बात यों हुई कि पच्चीसवें दिन अचानक राजीव की छोटी बहन सीढ़ियों से लुढ़क पड़ी। दुर्भाग्य से समय भी प्रातः साढ़े नौ बजे का ही था, जब राजीव बस्ता लेकर सुनहरे के घर की ओर बढ़ने ही वाला था। राजीव की मां ने चीख कर कहा, "तेरे बाबू जी घर में नहीं हैं। जा, दौड़ कर डाक्टर को बुला कर ला।"

"पर मां मुझे तो सुनहरे को लेने . . ." राजीव की आवाज़ लड़खड़ा गई।

"भाड़ में जाए तुम्हारा सुनहरा। महीने भर से लौंडे ने तंग कर रखा है," मां ने खीझते हुए कहा। "फौरन डाक्टर के यहां जाओ। देखता नहीं, बहन के खून निकले जा रहा है।"

राजीव अब कुछ न कह सका, फौरन डाक्टर की दुकान की ओर बढ़ चला।

उधर सुनहरे ने जब राजीव को आते न देखा तो वह स्वयं चल पड़ा। उसने सोच लिया कि राजीव को किसी कारण देर हो गई होगी पर मुझे तो समय पर पहुंचना चाहिए। सुनहरा फर्लांग भर ही पहुंच पाया था कि रास्ते में सड़क के एक किनारे एक सपेरा बीन बजाता दिखा। दो-चार लड़के उसके चारों ओर खड़े थे। सुनहरे को बीन बड़ी मीठी लगी और सांप को देखने की लालसा से वह रुक गया। बीन की मिठास ने और सांप के दर्शन के उल्लास में सुनहरा स्कूल पहुंचने के बारे में बिल्कुल भूल गया। सांप का खेल खत्म होने पर जब उसे होश आया तो वह बदहवास होकर स्कूल की तरफ दौड़ा, पर स्कूल का घंटा कभी का बज चुका था और पढ़ाई हो रही थी। उसे देखते ही सब लड़कों ने मुंह मोड़ लिये। सुनहरा अपनी सीट पर जाकर बैठ गया। राजीव भी एक ओर बैठा था, वह डाक्टर को घर पहुंचा कर सीधा स्कूल दौड़ आया था और समय पर पहुंच गया था।

घंटा खतम हुआ तो दूसरा शुरू हो गया। दूसरा खतम हुआ तो तीसरा। बीच में खेल की छुट्टी हुई तो हेडमास्टर ने बुलवा भेजा—"क्यों भई, सुनहरे! आज तुम्हें क्या हो गया कि तुमने हाथ में आते हुए पुरस्कार को यों खो दिया?" कमरे में प्रवेश करते ही हेडमास्टर ने पूछा।

"जी...ई...ई" सुनहरा कुछ भी न कह सका। सिर लटकाए चुपचाप खड़ा रहा।

"कम से कम इस बार मुझे ऐसी आशा नहीं थी। तुम जिन्दगी में कभी सफल नहीं हो सकते। निकल जाओ कमरे से।" अपनी योजना की असफलता से हेडमास्टर साहब बौखला उठे थे। सुनहरा कुछ भी न बोला, वैसे ही सिर लटकाए अपने कमरे में चला आया।

खेलने की घंटी के बाद तीन पीरियड और हुए। फिर खेल का घंटा टनटना उठा। आखिरी घंटे में बच्चे मैदान में पहुंच कर खेलते थे। सुनहरा भी खेल के मैदान में पहुंचा। सुबह से सुनहरे से कोई नहीं बोला था, उसका जी घुटने लगा था। उसे लग रहा था, वह किसी से अपने मन की बात कहे और खेले-कूदे। किन्तु जब वह खेल के मैदान में जाकर खड़ा हुआ तो उससे कोई भी न बोला। लड़के बाल से खेल रहे थे। सुनहरे

को बाल से खेलना बहुत अच्छा लगता था, इसलिए उसने भी पास पहुंच कर धीरे से कहा,

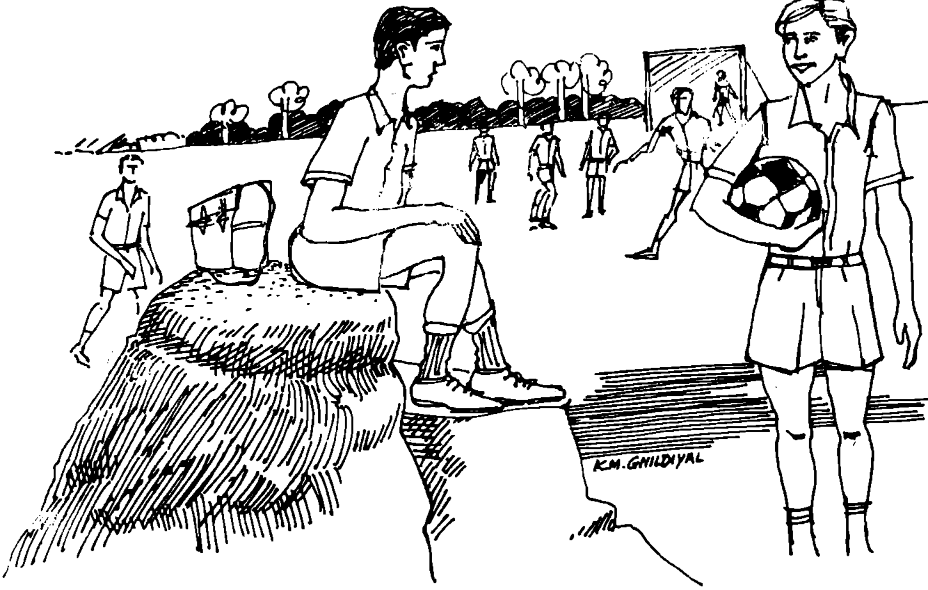

"हमें भी खिलाओ नरेन्द्र!" पर नरेन्द्र कुछ न बोला। चुपचाप अन्य लड़कों के साथ खेलता रहा। सुनहरे ने राजीव से भी उसी प्रकार प्रार्थना की पर राजीव ने भी ध्यान नहीं दिया। अब बारी-बारी से वह कक्षा के हरेक विद्यार्थी के पास गया, पर सबने उसके साथ खेलने क्या, बोलने से भी इन्कार कर दिया। सुनहरा बहुत उदास हो गया। वह सामने पड़े एक टीलेनुमा बड़े पत्थर पर अपना बस्ता रख कर बैठ गया। सामने लड़के उछल-कूदकर खेल रहे थे, उनकी किलकारियां हवा में गूंज-गूंज उठती थीं, पर सुनहरे की आंखों में आंसू डबडबा रहे थे क्या सचमुच उसे कभी कोई नहीं खिलाएगा?" यही प्रश्न उसे घेरे हुए था, सहसा राजीव उधर लुढ़कती हुई बाल लेने आया तो बोला, "सुनहरे जानते हो, हमने तुम्हारा बिल्कुल बायकाट कर दिया है, अब न कोई तुमसे बोलेगा, न तुम्हारे साथ खेलेगा। तुम अकेले खेलो, चाहे जहां जाओ हमें मतलब नहीं।"

सुनहरा कारण जानता था, इसलिए कुछ न बोला। चुपचाप बैठा रहा बिल्कुल गुमसुम। धीरे-धीरे मैदान खाली हो गया। सब लड़के अपने-अपने बस्ते उठा कर घर चले गए पर सुनहरा तब भी बैठा रहा। आखिर चपरासी ने उसे समझा बुझा कर घर भेज दिया। घर में घुसते ही वह बिलख-बिलख कर रोने लगा। मां ने हृदय से लगा कर पूछा, "क्या हुआ मेरे लाल को?"

"मां मुझसे कोई नहीं बोलता मेरे साथ कोई नहीं खेलता", सुनहरे ने सुबकते हुए कहा।

"क्यों?" मां को बड़ा आश्चर्य हुआ।

"क्योंकि मुझे आज फिर देर हो गई थी।" सुनहरे ने मां की गोद में सिर रख दिया।

मां समझ गई बात क्या हुई होगी। सुनहरा जरूर कहीं रास्ते में खड़ा रह गया होगा। इसलिए उसने कुछ पूछा नहीं। गोद में पड़े हुए सुनहरे की पीठ पर प्यार से हाथ फेरती हुई बोली, "बेटे, उन लड़कों ने ठीक ही किया है। जो बच्चे अपनी बात के पक्के नहीं होते, समय के पाबंद नहीं रहते, उनसे कोई भी कभी नहीं बोलता, सबकी नजरों में गिर जाते हैं। बड़े होकर भी वे कभी किसी का प्यार नहीं पा सकते।"

सुनहरा किसी की नजरों में गिरना नहीं चाहता था—वह सबके साथ खूब हिल-मिलकर रहना चाहता था, वह सबका प्यार चाहता था। इसलिए उसने निश्चय कर लिया कि वह किसी भी काम में कभी देर न करेगा। और हेडमास्टर साहब को महान आश्चर्य हुआ, अब उन्होंने देखा, कि अगले महीने नहीं, अगले से अगले महीने और फिर अगले महीने भी ट्राफी छठी कक्षा के पास ही पहुंचती रही। उस अंतिम ठोकर ने सुनहरे को कहां से कहां पहुंचा दिया कि उसके बड़े होने पर लोग उसके कार्यक्रम को देखकर अपनी घड़ियां मिलाते थे।

एक अकेली लड़की

पुस्तकों का एक मोटा बैग नीता ने अपनी पीठ पर लाद लिया था। उसके हाथ में खाने का डिब्बा था और वह खड़ी-खड़ी चिल्ला रही थी, "मां, जल्दी से मेरा चार्ट दे दो, मुझे स्कूल को देर हो रही है।"

"कौन-सा चार्ट? अपने आप ले ले," मां ने रसोई से बाहर आते हुए कहा।

"मेरी अच्छी मम्मी, तुम दे दो न! देखो, मेरे दोनों हाथ घिरे हैं। वह रखा चार्ट अल्मारी के ऊपर ......" नीता ने संकेत किया।

"ओफ्फ़ो! कितने ऊपर रखा है! अरे, इसे क्या चोर उठाकर ले जाते?"

"मां, चोर तो न ले जाते, पर कोई इस पर धब्बा डाल देता, गंदा कर देता तो?" नीता ने मां के हाथ से चार्ट लेते हुए कहा। फिर बोली, "मां, इस पर एक धागा और लपेट दो, लड़कियां बार-बार खोलकर देखती रहती हैं, फिर यह गंदा हो जाता है।"

"गंदा हो जाने की इसे कितनी चिन्ता है!" मां ने प्रशंसात्मक दृष्टि से बेटी को निहारा और फिर एक डोरा लाकर उसे लपेटने लगी। ठीक नहीं लिपटा, तो अचानक उस चार्ट को दुबारा गोल करने के लिए खोला।

"अरे, यह क्या!" देखते ही नीता बुरी तरह चीख उठी। "मां, मेरा यह चार्ट तो तमाम मिटा पड़ा है।" नीता ने बस्ते को कंधों से उतार कर जमीन पर धम्म से फेंक दिया और फफक कर रो उठी।

"कल रात अच्छा खासा चार्ट बना कर रखा था और अब जरा इसकी गत देखो, कुछ दिख रहा है तुम्हें इस पर?" नीता ने मां के सामने चार्ट खोल कर फैला दिया।

"तो आखिर हुआ क्या?" मां ने पूछा।

"भैया ने इसे मिटा कर रख दिया, मेरे सारे चार्ट का सत्यानाश हो गया। अब मैं स्कूल में क्या दिखाऊंगी?" नीता बुरी तरह सुबक उठी। और मैं तो इस चार्ट को कतई नहीं ले जाऊंगी, मेरा सारा चार्ट खराब कर डाला," कहते हुए नीता ने चार्ट के टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

"हाय रे, फाड़ क्यों डाला?" मां ने स्वर में रोष भर कर पूछा। तभी नीता का भाई मदन अकस्मात घर में बड़बड़ाते हुए घुसा, "आज पेन भूल गया था घर में, दुबारा आना पड़ा।"

"दुबारा-तिबारा के बच्चे, बोल, बहन का चार्ट क्यों खराब किया?" मां ने डपट कर पूछा।

मदन ने पश्चाताप दिखलाने के स्थान पर तन कर कहा, "मैं तो हजार बार मिटाऊंगा, आखिर मैंने बनाया था।"

"इसने मुझे कल रात अपनी लायब्रेरी की किताब पढ़ने को नहीं दी थी न, इसीलिए मैंने चुपके से चार्ट खराब कर दिया", कहता हुआ मुंह चिढ़ा कर मदन चला गया। नीता फूट-फूट कर रोने लगी।

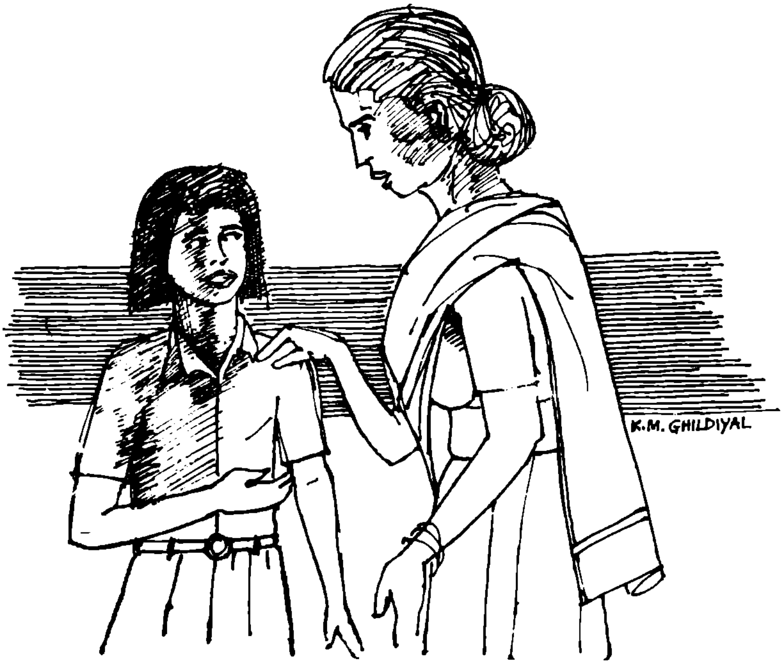

"अच्छा, तो कपड़े बदल ले और आज स्कूल न जा," मां ने इस बार घुड़का।

"जाऊंगी नहीं, तो गैर-हाजिर नहीं हो जाऊंगी। 'अटेण्डेंस प्राइज' फिर मुझे मिलेगा क्या?" मां की बुद्धि पर तरस खाती हुई नीता स्कूल चल दी।

बाज़ार की भीड़-भाड़ वाली सड़क पार करके अब वह स्कूल वाली चौड़ी और सूनी सड़क पर आ पहुंची थी।

"मिस से कह दूंगी बनाना भूल गई", उसने सोचा। तभी किसी ने उसके कान में कहा, "झूठ कहना पाप है।"

"तो?" नीता ने अपने मन से ही पूछा।

"तो क्या, जो हुआ वही कहो।"

"मिस नाराज होंगी।"

"मिस खुश होंगी, " मन ने फिर समझाया। वह अब स्कूल के पास आ पहुंची थी। क्लास में पहुंचते ही वह मिस के पास गई और बोली, "मिस, आज मैं चार्ट नहीं लाई हूं, कल लाऊंगी।"

"क्यों," मिस ने पूछा।

नीता का मन किया कह दे, "भूल आई हूं।" पर, फिर हिम्मत कर के वह बोली, "मिस, मुझे आता नहीं था। मैंने अपने भाई से बनवा लिया था, उसने ही बाद में उसे खराब कर दिया।"

"मेरे पास आओ," मिस ने कहा।

"जी।"

"कल बना कर लाना, हूं।" मिस ने उसकी पीठ पर थपथपाते हुए कहा। उसको बड़ा सहारा मिला। घर लौटने पर, खाना खाकर उसने बाजार से नया कागज मंगवा लिया और जमीन पर चटाई बिछा कर चार्ट बनाने बैठ गई।

"ला, मैं बना दूं," मदन ने देखा, तो वह पास आ गया। उसे अपने चार्ट खराब करने पर इस समय बहुत दुख हो रहा था।

"नहीं, मैं अब तुमसे हरगिज नहीं बनवाऊंगी", नीता ने मुंह फुलाकर कहा।

नीता ने अब निश्चय कर लिया कि वह चार्ट बना कर ही रहेगी। वह बड़े ध्यान से चार्ट पर झुकी-झुकी एक-एक तस्वीर बनाती रही। उसने इस समय पक्का निश्चय कर लिया था कि वह चार्ट बना कर ही रहेगी। बस, इसी विश्वास के बल पर वह लगी रही, लगी रही।

शाम हो गई। आसमान में दो-तीन तारे टिमटिमाने लगे, पर वह कागज पर झुकी रही। मां ने कई बार उसे चार्ट छोड़ देने के लिए कहा, भैया से मदद ले लेने के लिए कहा, पर नीता बिना कुछ कहे-सुने चुपचाप काम में लगी रही और जब कमरे की बत्ती जली, तब तक उसके कागज पर सभी सवारियां बन चुकी थीं। पूरा चार्ट तैयार हो चुका था।

आज वह बेहद खुश थी, क्योंकि उसने अपना चार्ट स्वयं ही तैयार किया था।

एक पेड़ ऐसा भी

"मिठाई का पेड़ बहुत ऊंचा नहीं था। बस इतना ऊंचा था कि तुम छू लो। उसके पत्ते बहुत सुन्दर और चिकने थे, ऐसे चिकने और बड़े, जैसे मिठाई रखने का दोना हो और पत्तों की जगह, जानते हो बेटा, उस में क्या लगा था?"

"नहीं मां, हमें नहीं मालूम," केशव ने बड़े भोले स्वर से और उत्सुकता-भरे लहजे में कहा।

"बस, मत पूछो क्या लगा था", और फिर जबान को चटकारा देते हुए मां ने कहना आरम्भ किया, "उसमें लगे थे नन्हें-नन्हें, प्यारे-प्यारे, चिकने-चिकने कुमकुमे।"

"कुमकुमे किसे कहते हैं, मां?" कहानी सुनते हुए रंजन परेशानी में पड़ गया।

"अरे बेटा, तुम्हें कुमकुमे भी नहीं मालूम?"

"नही", अब तो केशव और रंजन दोनों ने ही अपनी गर्दनें इन्कारी में हिला दीं।"

"कुमकुमे कहते हैं उन बत्तियों को, जो तुम्हारे घर में जलती हैं, जिन्हें तुम बल्ब कहते हो।"

"हूं, समझ गए। फिर क्या हुआ?"

"फिर तो बेटा, कुछ मत पूछो, शीला, जो परी देश में पहुंच गई थी, उसने ज्यों ही उनमें से एक बल्ब को छुआ, वह सुन्दर पेड़ा बन गया।"

अब तो बच्चों के मुंह में भी पानी आ गया। एक साथ बोल उठे, "अरे!"

"और क्या! और शीला को खूब भूख लग रही थी। उसने वह पेड़ा चट से मुंह में डाल लिया और खा लिया।"

"मां, हम भी खाएंगे," छोटी रंजना मचल कर बोली।

"अरे सुनो तो सही, क्या-क्या मांगोगी? शीला ने फिर दूसरे कुमकुमे को छुआ और वह सुन्दर इमरती बन गया। तीसरे को छुआ तो वह एक बडी-सी जलेबी बन गया। चौथे को छुआ तो गुलाब जामुन, पांचवें को छुआ तो मोटा-सा दानेदार कलाकन्द, छठे को छुआ तो पीला-पीला, बड़ा-सा बूंदी का लड्डू और सातवें को छुआ तो चमचम।"

रंजन टोक देता और रंजन करता तो केशव। इम्तिहान के भी पूरे दो महीने रह गए थे। दो महीने तक वे लगातार मां के कहने के अनुसार काम करते रहे।

दो महिने बाद बच्चे बेचैन हो गए, पर मां उन्हें बहलाती रही कि पेड़ उगना शुरू हो गया है, घबराओ नहीं।

उस दिन इम्तहान का नतीजा निकलने का दिन था और साथ ही पेड़ निकलने का भी। केशव दौड़ता-दौड़ता घर आया। बोला, मां, अब के हम पहले नम्बर पास हुए हैं।" रंजन ने भी आकर यही खबर दी। रंजना छोटी थी, बोली, "हम भी!" और घर के सब लोग खिलखिला कर हंस पड़े।

तीनों बच्चे आज बेहद खुश थे। मां ने सब को दोना भर मिठाई खाने को दी थी और कहा था, "बेटो, यह उसी पेड़ की मिठाई है।"

"और मिठाई का पेड़ कहां है, मां?" सब बच्चों ने उत्सुकता से पूछा।

"यह देखो, सामने लगा!"

"किधर?"

"देखो, अच्छी तरह देखो" और बच्चों ने चारों ओर आंखें दौड़ाई तो दीवार पर बिलकुल सामने वहीं बड़ा-सा गत्ता लटक रहा था, जिस पर मां की बताई तीनों बातें लिखी थीं और जिन्हें वे अब तक करते आए थे।

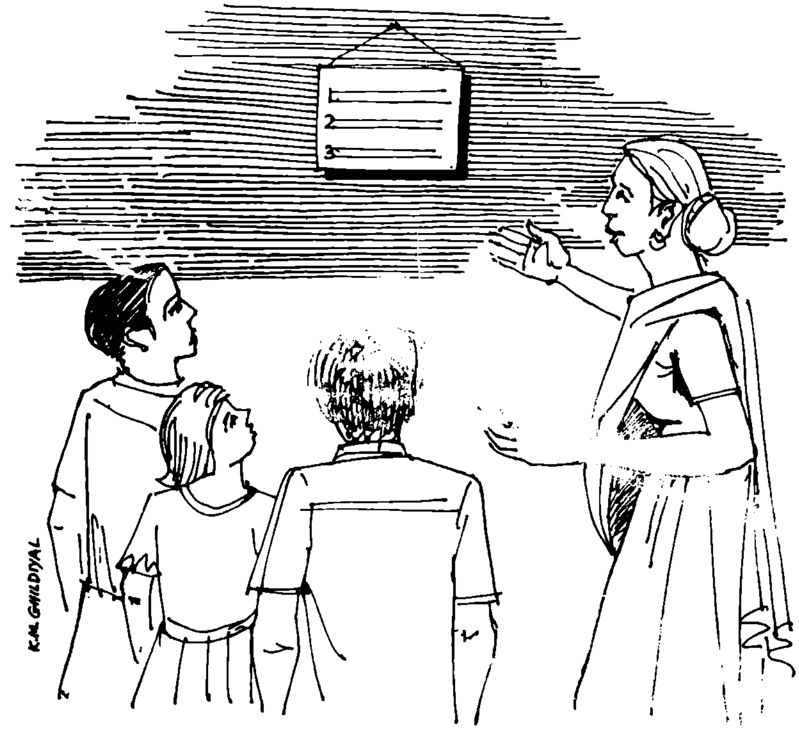

तीनों बच्चे झुंझला कर बोले, "मां, आप झूठ कहती हैं, यहां तो कहीं भी कोई पेड़ नहीं है।"

"मेरे भोले बच्चो, इन्हीं तीनों बातों की लिखी हुई उस तख्ती पर मिठाई का पेड़ है। तुम ने इसी की सेवा की तभी तो तुम्हें आज मिठाई मिली। अच्छा नतीजा निकला। तो, बेटो, इस मिठाई के पेड़ का दूसरा नाम है, मेहनत का पेड़। समझे, चाहो तो अब तुम इसे छोड़ सकते हो।"

पर बच्चों को मेहनत के पेड़ की मिठाई खाने की आदत लग चुकी थी, वे भला कैसे छोड़ते।

मन का बोझ

सुक्खू के मरने पर गंगी की जिन्दगी बहुत दुखमय बन गयी। सुक्खू था तो गंगी को कोई चिन्ता नहीं थी। सुक्खू दिन-रात सिर जुटा कर मेहनत करता, खेत सोना उगलता और गंगी अपनी दोनों बेटियों के साथ चैन की बंसी बजाती। पर अब तो सारा ही भार गंगी के कंधों पर आ गिरा। कमली और चमेली अभी छोटी थी, उन्हें घर की क्या चिन्ता। पर दोनों अपनी मां की बहुत प्यारी थीं। दोनों मां का कहना मानती थीं और मिल-जुल कर खेला करती थीं, किन्तु जब से गंगी ने कमली और चमेली को खेत पर जाने का काम सौंप दिया तब से दोनों में लड़ाई की शुरूआत हो गई। बात यह हुई कि गंगी ने अपने नन्हें से खेत के बीच में से एक मामूली हद खींच दी और दोनों बहनों से कह दिया, कि वे दोनों कोई-सा हिस्सा अपना मान लें और अपने हिस्से की खुद देख-भाल करें।

कमली ने कहा, "मां, मैं तो दायीं ओर का हिस्सा लूंगी।"

चमेली ने कहा, "फिर मैं बायीं ओर का ले लूंगी।"

अब दोनों बहुत सवेरे उठतीं और खेत में जा पहुंचती। खेत में उगी हुई फालतू घास-पात को भी वे उखाड़ कर फेंकतीं। फिर वे खेत के बोने-जोतने में भी हाली की सहायती करतीं। घास-पात उखाड़ते हुए उस दिन चमेली गुनगुनाने लगी तो कमली को बहुत बुरा लगा।

शाम को घर लौट कर वह मां से बोली, "मां, चमेली को तुमने अच्छा वाला हिस्सा दिया है। मेरे वाले हिस्से में बहुत घास-पात है, कंकड़िया भी बहुत हैं। मेरे तो हाथ छिल जाते हैं और यह आराम-आराम से सब चीज निकालती रहती है।" तभी चमेली को याद आया, कि कमली आज सारे समय आंसू बहाती रही थी [illegible] पूछने पर मां कुछ न बोली थी। जरूर यही बात होगी।

चमेली को दया आ गई। वह बोली, "मां, हम दोनों अपना-अपना हिस्सा बदल लेंगी।"

"ठीक है", मां ने कहा, और इतनी आसानी से झगड़ा निबटते देखा तो बहुत प्रसन्न हुई। दो दिन किसी तरह गुजर गए। चमेली ने कोई शिकायत नहीं की, पर कमली [illegible] शाम को घर पर जाकर रोती रही। किसी तरह खेत की सफाई समाप्त हुई। दोनों के खेतों में सफेद-सफेद, सुन्दर, बड़े-बड़े गोभी के फूल खिल उठे। हरी-भरी मटर लहलहा

उठी। मूली, गाजर, शलजम, बथुआ, पालक सब खूब हुआ और अब गंगी ने दोनों को अपने-अपने खेत की पैदावार टोकरी में भर-भर कर घर लाने के लिए कहा, जहां से फिर वह बाजार में बेचने ले जाए।

किन्तु पहले ही दिन जब कमली और चमेली दोनों अपने-अपने टोकरे लाद कर चलीं तो कमली रास्ते में फिर रो उठी। वह बोली, "चमेली, मेरा टोकरा बहुत भारी है। गर्दन पिरा उठी है।

चमेली अपना टोकरा सिर पर लादे, हरे-भरे खेतों को निरखती, गुनगुनाती, हंसती, खिलखिलाती हुई ले जा रही थी। वह ठिठक कर बोली, "तूने ज्यादा क्यों भरा?"

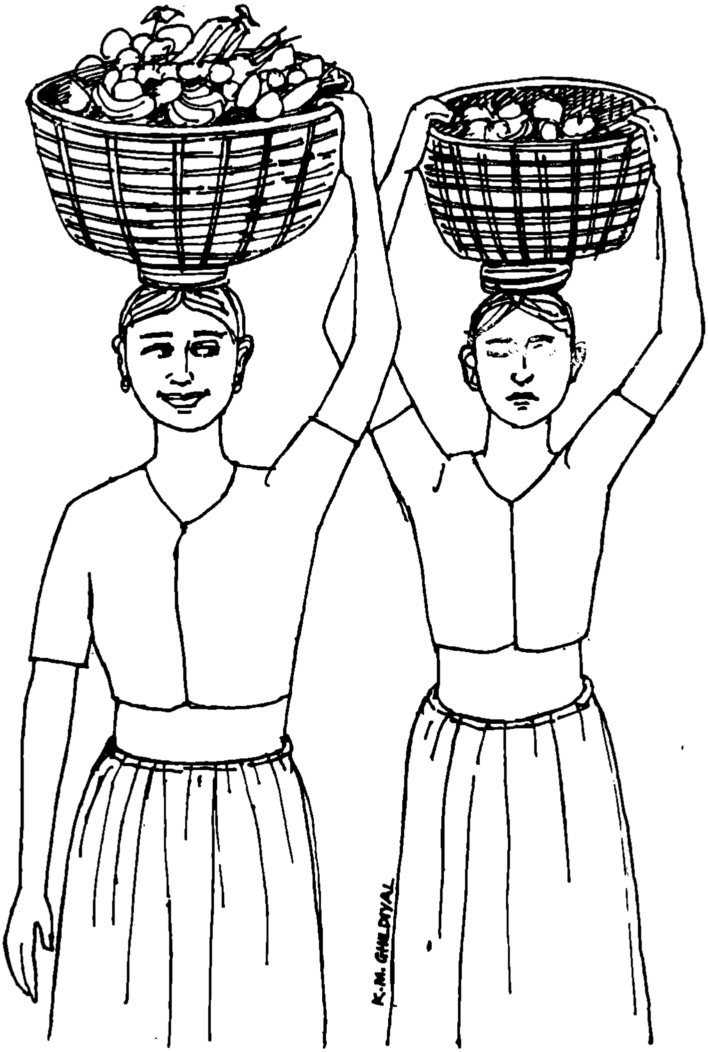

"कल से कम भरूंगी।"

"अच्छा ला मुझे अपना टोकरा दे दे।" चमेली के मन में दया आ गयी थी। दोनों ने टोकरा बदल लिया, पर कमली इस टोकरे को भी नहीं ले जा सकी। चमेली ने एक-एक कर दोनों टोकरे घर में ला धरे, पर उसके मुंह पर तनिक भी थकावट अथवा उदासी के चिन्ह न थे।

दूसरे दिन गंगी स्वयं खेत पर गयी और दोनों के टोकरों में बराबर के बोझ की सब्जी रख दी। रास्ते भर फिर वही हाल हुआ। चमेली हंसती हुई चली और कमली रोती हुई। आश्चर्य यह कि चमेली जिस चीज को छू लेती वह फूल-सी हल्की-फुल्की बन जाती और फिर उसे जरा भी बोझ न लगता। और कमली के हाथों में न जाने क्या था कि जो छूती वही पत्थर की तरह भारी हो जाता।

उस दिन धूप बड़ी तेज थी। लू की लपटें और पानी की प्यास चलते आदमी को पागल बना देती थीं, पर चमेली आज भी अपना टोकरा सिर पर लादे बड़े आराम से मुस्कराती हुई, इठलाती हुई बढ़ रही थी और कमली बेचारी बड़ी परेशान थी। अपना बोझ उसे मन भर का लग रहा ता। घर पहुंचते ही वह दहाड़ें मार-मार कर रोने लगी, "मां, मेरी तो गर्दन टूट गयी, मेरे सिर में बहुत दर्द है।" मां ने हाथ लगाया तो सचमुच देह तप रही थी। चमेली अच्छी-खासी थी। वह जैसी सुबह खेत को गयी थी उससे भी अधिक स्वस्थ दीख पड़ रही थी। पास-पड़ोस की औरतें, बच्चे भी आ गए और आश्चर्य करने लगे।

मां ने पूछा, "चमेली बेटी, क्या बात कि तू मन-भर का बोझ उठाकर भी नहीं थकती और कमली दस किलो में ही मर मिटती है?" सचमुच सभी हैरान थे, आश्चर्य से मुंह उठा कर सुनने लगे।

चमेली बोली, "मां, बोझ मन भर का नहीं, मन का होता है, मन में जितना समझा जाए हुआ करता है। मैं भारी से भारी बोझ लाद कर भी मन में यह नहीं सोचती कि बोझ बहुत भारी है, हल्का समझती हूं तो हल्का ही लगता है। गुनगुनाती, हंसती, खिलखिलाती रहती हूं तो बोझ और भी हल्का लगता है। कमली अपने बोझ को सचमुच ही मन भर का माने रहती है और दुख पाती है।

बात सच थी। सब खिलखिलाकर हंस पड़े। सचमुच दुख मानने का ही होता है।

आसमान की मेज

नवल अव्वल नम्बर का पतंगबाज बन गया था। माता-पिता देखकर हैरान रहते। कभी दोनों के खानदान में किसी ने पतंग को छूआ तक न था और यह बित्ता-भर का लड़का अभी से पतंग की डोर से आसमान नापने लगा। हां, बित्ता-भर का ही दिखता था नवल। उम्र बारह वर्ष, पर कद कद्दू-सा, यों देखने में वह बुरा नहीं लगता था—उसका भरा-भरा ठोस शरीर, चमकीली आंखें, सलोना तांबे जैसा रंग। हर काम में वह तुरत-फुरत माहिर बन जाता, हर बात फरटि से बोलता, हर मुश्किल काम जादू जैसी सफाई से कर डालता। उसके पैरों में बला की ताकत थी, उसके हाथों में गजब का हुनर था। चित्र बनाता तो लगता उसमें चित्रित आकृतियां बोल पड़ेंगी। वह गीत गुनगुनाता तो लगता किसी परीलोक से स्वर उठ रहा है। पढ़ने-लिखने में भी बेहद होशियार था वह, माता-पिता संतुष्ट थे। पीठ पीछे आपस में बेटे की तारीफों के पुल बांधते रहते, सामने कभी उसे घुड़कते, कभी उसे तरह-तरह के पाठ पढ़ाते। पर इस बार माता-पिता का कोई भी सबक नवल के कंठ तले नहीं उतर पा रहा था। पतंग उड़ाने में न उसे समय का ध्यान रहता, न खाने-पीने का होश। मां नीचे से आवाज देती, "बेटा, एक बात तो सुन जा!"

"अभी आया मां, अभी बस एक मिनट में।" नवल की आंखें पतंग के रंगीन बिंदु के साथ आसमान में तैरती रहतीं और वह डोर बढ़ाने की हड़बड़ी में बेचैन रहता। उसका एक मिनट एक घण्टे तक भी खत्म न होता और मां का गला पुकार-पुकार कर रुंध-सा जाता।

"आग लगे ऐसी पतंग में, कैसा बौराया है यह लौंडा। तब पता चलेगा जब स्कूल से फेल का कार्ड लेकर आएगा," मां सुनाती रहती, पर नवल के कानों पर जूं न रेंगती। नवल की पतंग दोपहर से शाम के झुटपुटे तक आसमान में तैरती रहती, सारी धूप नवल के सिर पर से गुजर जाती। नवल की आंखें धूप में आसमान की ओर टकटकी बांधे देखते-देखते गूलर के फूल की तरह लाल और फूली हुई रहने लगी थीं। मां झुंझलाहट में न जाने कितनी बार उसे अंधे हो जाने की चेतावनी दे चुकी थी, पर नवल का कार्यक्रम अब यही बन चुका था। स्कूल से आया, बस्ता पटका, उल्टा-सीधा खाना गटका और मिनट भर में पतंग के साथ छत पर। छत की छोटी-छोटी मुंडेरें थीं, हरदम गिरने

का डर बना रहता। पिता घर में आते तो चीखते, बोलना तक छोड़ देते, पर नवल लुक-छिप कर मां की चिरौरी कर, छत पर भाग कर ही चैन लेता।

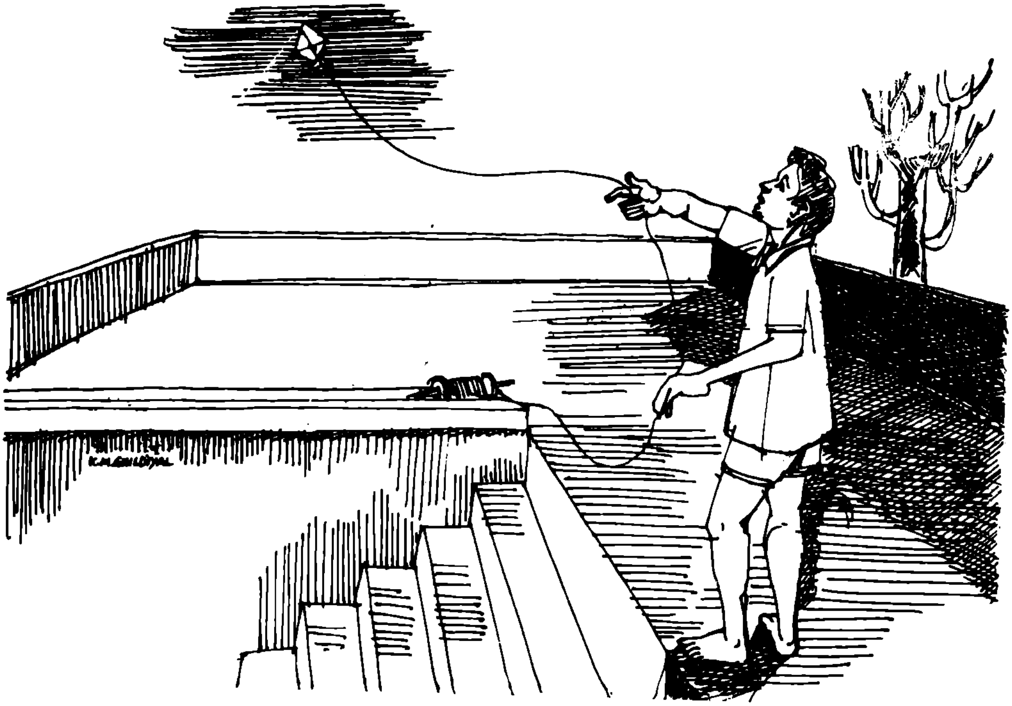

उस दिन नवल पतंग उड़ा रहा था कि तभी मेहरी आ गई, बोली, "बहूजी, एक बिनती तो मैं करूंगी, छोटे भैया को छत पर न चढ़ने दिया करो, आज मैंने देखा नीचे की ओर टांगें लटकाए बैठे थे। भगवान न करे ध्यान उचट जाए तो।"

"और क्या, हाय! मेरा तो यह मुंह काला करवाएगा किसी दिन", मां मेहरी का समर्थन करते हुए फिर झींकने लगी। फिर डपट कर बोली, "उतर नीचे, न टांग तोड़ दूं तो बात है, ऊपर चढ़ना भूल जाएगा, लाट साहब!"

मां नवल को आज नीचे उतारने पर तुली थी और नवल की आंखें एक सुन्दर रंगीन टूटती हुई पतंग को लूटने के लिए बेचैन थीं। पतंग टूट कर उसी की छत पर उतर रही थी। नवल हर्ष से पागल हो उठा था कि तभी पतंग छत पर गिरती-गिरती अचानक नीचे आंगन में जा गिरी। अपने ही आंगन में गिरी थी और नवल को कोई बेचैनी नहीं होनी चाहिए थी, पर नवल को न जाने क्या हुआ, कि वह बड़ी अधीरता से मुंडेर को थामता-थामता भी धम्म से नीचे आंगन में गिर पड़ा। गनीमत थी कि आंगन में उस दिन बरसात में गीला हुआ बुरादा और कागज की ढेर सारी गीली कतरन सूख रही थीं।

फिर भी नवल को चोट हल्की न लगी थी—कोहनियों के नीचे की हड्डियां चटक गई थीं और शाम तक दोनों बांहों पर प्लास्टर चढ़ चुका था।

"और उड़ाएगा पतंग, मिल गया नतीजा पतंग उड़ाने का। दो पैसे की पतंग के लिए जान देने पर उतारू हो जाते हैं ये आजकल के छोकरे।" मां नवल को सुनाती रहती और नवल गुमसुम बना सब कुछ सुनता रहता।

तीन महीने बाद नवल के हाथ प्लास्टर से फिर बाहर निकल आए। नवल स्कूल जाता हुआ भी इन तीन महीने हाथों से एकदम नाकाम हो गया था। उसे अब मालूम पड़ा, कि हाथों के बिना भी आदमी कितना लाचार और अपाहिज हो जाता है।

मां को डर था कि नवल हाथ ठीक हो जाने पर कहीं छत पर न चढ़े। अब उसने नवल को हर हालत में ऊपर न चढ़ने देने का निश्चय कर लिया था, पर उसे बेहद खुशी हुई, जब उसने देखा कि नवल ने स्वयं पतंग से मुंह मोड़ लिया है। एक बार भी तो उसने ऊपर चढ़ने की और पतंग छूने की न सोची। वह अब प्रायः अपनी मेज पर जमा बैठा विज्ञान की पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएं पढ़ता रहता, खेलने-खाने के समय उठता और फिर जम जाता।

मां को नवल का मन-पसन्द खेल छूट जाने पर कभी-कभी दया भी आ जाती। उस दिन वह चुपके से नवल के पिता से बोली कि बेचारा इतना डर गया है कि अब पतंग का नाम तक नहीं लेता। पिता आफिस से आकर कपड़े बदल रहे थे और अभी किसी दूसरे विचार में ही मग्न थे, इसलिए नवल की मां की बात उन्होंने पूरी तरह नहीं सुनी, पर नवल ने मां का स्वर सुन लिया। वहीं से बैठे-बैठे जोर से बोला, "मां, तुम्हारा बेटा डरपोक और दब्बू नहीं है, जो जरा-सी चोट से डर जाए, परन्तु अब तो उसने सचमुच की पतंग बनाने का इरादा कर लिया है।

"क्या मतलब?" मां नवल की मेज के पास खिसक आई।

"मतलब, यही कि विज्ञान का भरपूर ज्ञान प्राप्त करके, मैं खुद राकेट बनाऊंगा और उसमें बैठकर चांद-सितारों की सैर करूंगा। देश-विदेश से ढेर सारा ज्ञान बटोर कर लाऊंगा, और तब-तब . . ."

नवल की आंखें दृढ़ निश्चय से चमक रही थीं और मां हक्की-बक्की खड़ी थी। दो क्षण चुपचाप रहकर बोली, "तूने पहले यह बात क्यों नहीं सोची, राजे बेटे?"

"पहले, पहले तो मां मुझे सोचने की फुरसत ही न थी, कुछ सुनने की चाह ही न थी। आसमान की तरफ ताकते-ताकते मैंने सारा समय बरबाद कर दिया। अब मास्टर

जी बताते हैं कि आसमान की मेज को छूने के लिए विद्यार्थी को अपनी मेज पर मेहनत करनी चाहिए। सो, मां, पहले मैं अपनी मेज पर . . ."

"मेरे बच्चे, मेरे लाल, कितना समझदार हो गया है तू!" —और आवेश में मां नवल को छाती से चिपकाए खड़ी रही, आंखों में एक सपना संजोए हुए कि जब उसका पतंगबाज बेटा आसमान के चांद-सितारों से खिलवाड़ करेगा।

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार